जनसत्ता

12 जून, 2019

हड़बड़ी का हासिल

दिल्ली में एक पत्रकार की गिरफ्तारी के मसले पर सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट ने जो टिप्पणी की है, उससे एक बार फिर यही स्पष्ट हुआ है कि सरकारों और खासतौर पर उनकी पुलिस को किसी मसले पर कार्रवाई के दौरान किन मानकों का ध्यान रखना चाहिए। गौरतलब है कि हाल में एक पत्रकार प्रशांत कनौजिया ने अपने ट्विटर अकाउंट पर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के बारे में कुछ टिप्पणी करती हुई एक महिला के वीडियो के साथ-साथ एक निजी टिप्पणी भी कर दी थी। इसे अभद्र और योगी आदित्यनाथ को बदनाम करने वाला बताते हुए इसके खिलाफ शिकायत दर्ज की गई। इस पर उत्तर प्रदेश की पुलिस ने जिस तरह आनन-फानन में कार्रवाई करते हुए दिल्ली से प्रशांत को गिरफ्तार कर लिया, वह अपने आप में यह बताने के लिए काफी था कि इस मामले में संवैधानिक व्यवस्था या कानून का खयाल कम किया गया था और धौंस जमाने को ज्यादा तरजीह दी गई थी। इस जल्दबाजी पर पहला सवाल यही उठा कि सरकार के तहत संगठित और पेशेवर तरीके से काम करने वाली पुलिस इतने अगंभीर तरीके से हड़बड़ी कैसे कर सकती है! क्या गिरफ्तारी के बिना इस मसले पर कानून प्रक्रिया नहीं अपनाई जा सकती थी?

जाहिर है, इस पर समूचे पत्रकारिता जगत में तीखे सवाल उठे और लोगों ने सरकार के कामकाज के तौर-तरीके को कठघरे में खड़ा किया। इस मामले में सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका पर सुनवाई के दौरान अदालत ने साफ राय जाहिर की है कि ट्विटर पर की गई उस टिप्पणी के गुण-दोष का सवाल अलग है, लेकिन किसी भी राय के आधार पर इस तरह गिरफ्तारी सही नहीं है। अदालत ने कहा कि नागरिक की स्वतंत्रता उनका अधिकार है और उससे कोई समझौता नहीं किया जा सकता। इसकी गारंटी संविधान में दी गई है और इसका हनन नहीं किया जा सकता। हालांकि इस मामले में दर्ज शिकायत पर मुकदमा चलता रहेगा। यानी सुप्रीम कोर्ट ने सरकार या उसकी पुलिस को यह बताने की कोशिश की है कि उसे अपनी संवैधानिक या कानूनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए जरूरी गंभीरता बरतनी चाहिए। लेकिन यह समझना मुश्किल है कि कई बार सोशल मीडिया पर की जाने वाली टिप्पणियों पर दर्ज शिकायतों पर पुलिस की ओर से गैरजरूरी हड़बड़ी का प्रदर्शन क्यों किया जाता है। जबकि ऐसी हड़बड़ी का खमियाजा इस रूप में उठाना पड़ता है कि अदालत में कानूनी कसौटी पर ऐसे मामले कमजोर साबित होते हैं।

यह किसी से छिपा नहीं है कि ट्विटर या फेसबुक जैसे सोशल मीडिया के मंचों पर की जाने वाली हल्की-फुल्की टिप्पणियां बेहद आम हैं और उनमें से ज्यादातर अपने असर में कोई खास अहमियत नहीं रखतीं। इन मंचों पर जो राय जाहिर की जाती है, उसमें किसी अनुशासन की उम्मीद इसलिए बेमानी है कि उसे किसी निजी जगह के रूप में देखा जाता रहा है और वहां लोग किसी सीमा का खयाल रखना जरूरी नहीं समझते। हालांकि निश्चित रूप से यह अपेक्षा वाजिब है कि जानबूझ कर किसी की छवि को नुकसान पहुंचाने की मंशा से कोई गैरजिम्मेदाराना टिप्पणी नहीं की जाए। मगर सच यह है कि वहां कोई व्यक्ति बहुत सलीके से एक जरूरी बात भी कहता है तो दूसरा शख्स बेहद अगंभीर तरीके से सतही टिप्पणी कर देता है। वहां अक्सर बड़े नेताओं या राजनीतिक गतिविधियों पर हल्के-फुल्के अंदाज में बातें की जाती हैं। लेकिन शासन का अपना एक ढांचा है और उसके कामकाज करने के तौर-तरीके निर्धारित हैं। संवैधानिक नियम-कायदों से बंधे शासन को उसकी गरिमा का खयाल रखना चाहिए। नेताओं और राजनीतिकों को भी देश की लोकतांत्रिक परंपरा और नागरिक स्वतंत्रता की संवैधानिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए उदार रवैये का परिचय देना चाहिए।

चैंपियन का संन्यास

युवराज सिंह ने अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट से संन्यास भले ले लिया हो, वे आइपीएल भी न खेलें, लेकिन क्रिकेट की दुनिया में उनकी मौजूदगी हमेशा बनी रहेगी। युवराज क्रिकेट के सवश्रेष्ठ भारतीय ऑलराउंडरों में शुमार रहे। उम्मीद है कि वे अब विदेशी लीग में जलवा बिखेरेंगे। सत्रह साल के अपने क्रिकेट-जीवन में उन्होंने जो उपलब्धियां हासिल कीं, वे अपने में रेकार्ड हैं। चाहे मैचों की संख्या हो, रनों का आंकड़ा हो या विकेट या फिर आइपीएल मैच के खिलाड़ी की कीमत हो, युवराज हमेशा एक चैंपियन के रूप में ही रहे, मैदान में भी और मैदान के बाहर भी। उन्नीस साल की उम्र में क्रिकेट की दुनिया में कदम रखने वाले युवराज की उपलब्धि का सिलसिला 2004 से ही शुरू हो गया था जब उन्होंने लाहौर में पाकिस्तान के खिलाफ पहली टेस्ट सेंचुरी लगाई थी। इसके बाद 2007 में उन्होंने टी-20 विश्व कप में इंग्लैंड के खिलाफ एक ओवर में छह छक्के जड़े थे। इसीलिए उन्हें सिक्सर किंग भी कहा जाता है। इसके अलावा बारह गेंदों में सबसे तेज अर्धशतक भी लगाया था। विश्व कप में तीन सौ से ज्यादा रन और पंद्रह विकेट लेने वाले वे पहले ऑलराउंडर बने और 2011 में विश्व कप में 'मैन ऑफ द सीरीज' भी उन्हें मिला था। बाजार में कीमत के हिसाब से देखें तो 2015 की आइपीएल नीलामी में वे सबसे महंगे खिलाड़ी के रूप में सामने आए थे।

युवराज का जीवन दूसरे किक्रेट खिलाड़ियों से हट कर रहा है। उनके जीवन में सबसे बड़ा मोड़ 2011 में उस वक्त आया था, जब पता चला कि उन्हें फेफड़े का कैंसर हो गया है। यह कठिन वक्त था जब वे अपने करिअर के शीर्ष पर थे। लड़ना, गिरना और फिर उठ जाना युवराज की हमेशा से खूबी रही है। वे इस बात को स्वीकार भी करते हैं कि किक्रेट मेरे लिए एक ऐसा खेल रहा है जिसने मुझे लड़ना, गिरना और फिर उठ जाना सिखाया। उनके भीतर के इसी जुझारूपन और जज्बे ने कैंसर जैसी बीमारी से मुक्ति दिलाने में बड़ी भूमिका निभाई। युवराज ने कहा भी था कि कैंसर से ठीक होने के बाद वे एक तरह के भारी दबाव में थे, हर किसी को लग रहा था कि अब ये पहले वाला युवराज नहीं रहेगा। लेकिन युवराज ने इस दबाव को बड़ी चुनौती मानते हुए एक बार फिर साबित किया कि उनमें वही पुराना वाला दमखम आज भी है। इसके बाद ही युवराज ने 2012 में इंग्लैंड के खिलाफ टेस्ट खेला था। यह उनका आखिरी टेस्ट था। लेकिन वन डे, टी-20 और आइपीएल वे लगातार खेलते रहे।

युवराज की सत्रह साल की अंतरराष्ट्रीय किक्रेट की यात्रा वाकई शानदार रही। लेकिन पिछले कुछ समय से युवराज मैदान पर वैसा जलवा नहीं दिखा पा रहे थे जैसी उन्हें उम्मीद थी। इसीलिए बार-बार उनके मन में संन्यास को लेकर मंथन चल रहा था। भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआइ) के रुख से भी वे आहत रहे। उन पर यो-यो टेस्ट पास करने की शर्त लगा दी गई और इसमें पास न होने पर विदाई मैच तक की बात कह दी गई। हालांकि युवराज इस टेस्ट में पास हो गए थे और आखिरी टी-20 खेला। पिछले दो सालों में उनमें बेहतर प्रदर्शन का अभाव रहा, इसलिए इस बार की विश्व कप टीम में जगह बनने का सवाल ही नहीं था। हालांकि निश्चित ही युवराज के मन में इस बार का विश्व कप खेलने की इच्छा रही होगी। इसमें कोई दो राय नहीं कि युवराज का क्रिकेट-जीवन आने वाली पीढ़ियों के लिए किसी प्रेरणा से कम नहीं होगा।

कल्पमेधा

धर्म केवल लोगों की सेवा करने में है,
माला फेरने या पूजा में नहीं।
-शेख सादी

सोशल मीडिया और चुनौतियां

ज्योति सिडाना

सोशल मीडिया और गैजेटों की लत के कारण युवाओं में शारीरिक और मानसिक व्याधियां तेजी से बढ़ रही हैं। इससे उनमें निराशा व कुंठा पनप रही हैं और एक नए प्रकार की सांस्कृतिक विसंगति को जन्म दे रही हैं। यह संस्कृति न केवल सामाजिक संबंधों में उनकी सहभागिता को कम करती है अपितु उन्हें भय एवं आक्रामकता का शिकार बनाती है।

सहस्राब्दि जनसंख्या का अस्सी फीसद हिस्सा संदेश लिख कर या ऑनलाइन संवाद करना ज्यादा पसंद करता है। यह खुलासा ऑफकॉम के एक अध्ययन में हुआ है। इसके अनुसार सोलह से चौबीस वर्ष की आयु के पंद्रह फीसद युवा अपने फोन का इस्तेमाल लोगों से बातचीत के लिए नहीं करना चाहते, बल्कि मौखिक बातचीत के स्थान पर वे संदेश भेजना अधिक पसंद करते हैं। आज की किशोर पीढ़ी एक ही कमरे में अपने आसपास बैठे लोगों से बात करने के बजाय संदेश ही भेजती है। दरअसल, हम एक शोर रहित और आवाज रहित विश्व का हिस्सा बन चुके हैं। सार्वजनिक स्थानों पर होते हुए भी एक निजी विश्व निर्मित हो जाता है, जैसे भीड़ में, ट्रेन में, सड़क पर कहीं भी चलते हुए या बैठ कर हम ईअरफोन के जरिए अपना प्रिय संगीत सुन सकते हैं। जबकि एक-दो दशक पहले तक ट्रेन या बस में यात्रा करते समय लोग एक-दूसरे से बातचीत करके परिचय बढ़ाने में रुचि रखते थे, राजनीतिक व गैर-राजनीतिक विषयों पर चर्चा करते थे, खाना-पीना साझा करते थे, लेकिन अब यात्रा के दौरान ऐसा कोई शोर नहीं सुनाई देता, कोई अनुभव नहीं होता। अधिकांश लोगों के कानों में ईअरफोन या हेडफोन नजर आता है, या फिर मोबाइल, लैपटॉप पर वीडियो देखने में व्यस्त होते हैं। संभवतः इसलिए इस पीढ़ी को 'खामोश पीढ़ी' की संज्ञा दी जाती है।

अब इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सोशल मीडिया ने संचार और संवाद करने के तरीके को पूरी तरह से बदल दिया है। एक समय था जब लोग देर तक लैंडलाइन फोन पर अपने दोस्तों, परिवारजनों से बातचीत करते थे, विशेष अवसरों जैसे सालगिरह, त्योहार, पदोन्नति, नया सामान खरीदने इत्यादि पर फोन पर बधाई का तांता लग जाता था। पर अब हर अवसर पर केवल संदेश भेज कर काम चल जाता है। कितना अजीब है कि एक ही संदेश हम सबको भेज देते हैं? यह कैसे संभव है कि सबके लिए हमारी भावनाएं, हमारा प्यार या दुआएं एक जैसी हों? और यह भी सच है कि आमने-सामने या फोन की आवाज पर जो बधाई मिलती है, उसमें अलग ही आनंद आता है क्योंकि उसमें हंसी-मजाक और बहुत सारी दुआएं भी शामिल होती हैं। सोशल मीडिया ने इन सब चीजों को सामाजिक जीवन से गायब कर दिया है। मनुष्य केवल खुद तक सीमित हो गया है, इसलिए शायद अब सेल्फी का जमाना है, समूह फोटो का नहीं। फिर चाहे होटल में खाना खाते समय या किसी मॉल में घूमते समय, या शादी पार्टी के लिए तैयार होते समय सेल्फी लीजिए और तुरंत फेसबुक अथवा सोशल मीडिया पर अपलोड कर दीजिए, ताकि आपकी फोटो पर अधिक से अधिक कमेंट और लाइक मिल सकें। यदि आप यह सब नहीं करते तो आज के युग में आप सामाजिक प्राणी नहीं हैं, आपकी सामाजिक प्रतिष्ठा तुलनात्मक रूप से कम हो सकती है।

सामाजिक प्राणी और विकसित मस्तिष्क का स्वामी होने के नाते मनुष्य के लिए भाषा को संपर्क एवं संवाद स्थापित करने का सबसे प्रचलित और प्रभावी माध्यम माना जाता है। भाषा विज्ञानी सॉसर के अनुसार भाषा एक सामाजिक उत्पाद और वैयक्तिक व्यवहार दोनों है। अब सोशल मीडिया का उपयोग बढ़ने के बाद लोगों में संवाद या तो कम हो गया है या संदेशों में बदल गया है। जैसे-जैसे संवाद खत्म हो रहा है, वैसे-वैसे संस्कृति खत्म हो रही है, क्योंकि संस्कृति का पतन संवादहीनता से ही होता है। संस्कृति के भीतर संवेदनाएं, भावनाएं, अनौपचारिकता और अपनत्व की भावना होती है। संदेश-संस्कृति से जन साहित्य खत्म हो रहा है, इससे संस्कृति मर रही है। चूंकि संस्कृति जीवंत अनुभव होती है। यह टेक्नोलाजी निर्देशित सभ्यता आने वाले दौर में संस्कृति की हत्या का औजार बनेगी। क्या प्रौद्योगिकी का मनुष्य पर हावी होना विश्व युद्ध की आहट का संकेत दे रहा है? मौखिक संचार करने की शैली से व्यक्ति में भाषा विशेषज्ञता उत्पन्न होती है और उसमें अनुवाद करने की भी समझ विकसित होती है। संदेशों के माध्यम से नीरसता उत्पन्न हो रही है क्योंकि एक ही संदेश सबको भेज दिया जाता है, यहां तक कि अधिकांशतः बिना पढ़े ही संदेश दूसरों के आगे सरका (फॉरवर्ड) दिए जाते हैं, बिना जांच किए कि वे सही हैं या गलत।

ऐसा नहीं है कि सोशल मीडिया ने सकारात्मक पक्षों को उत्पन्न नहीं किया। आज ऐसे बहुत से लोग हैं जो बोलना चाहते थे, पर उन्हें कोई मंच उपलब्ध नहीं था। आज सोशल मीडिया ने उन्हें वह मंच दिया है जहां वे अपनी बात रख सकते हैं, अपनी प्रतिभा दिखा सकते हैं और लोग ऐसा कर भी रहे हैं। परंतु यह भी सच है कि कोई भी टेक्नोलॉजी अपने आप में बुरी नहीं होती। उसका सदुपयोग या दुरुपयोग उसे अच्छा या बुरा साबित करता है। सोशल मीडिया ने मौन की संस्कृति, आक्रामकता की संस्कृति और विरोध की संस्कृति को तीव्र किया है। ये तीनों एक सीमा तक तो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए ठीक हैं, लेकिन इनसे लोकतंत्र के लिए खतरा भी उत्पन्न हुआ है। राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जब व्यक्ति सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं, मीडिया कितना सही है कितना गलत, कौन-सी खबर सच है और कौन-सी झूठ, पुरानी सूचनाओं को कितने गलत तरीके से पेश किया जा रहा है, यह सब क्यों किया जा रहा है, जानना ज्यादा आवश्यक है। मीडिया खासतौर पर सोशल मीडिया जिस प्रकार की भूमिका निभा रहा है, वह संदेह के घेरे में है।

युवा पीढ़ी इस वक्त एक ऐसे संक्रमणकाल से गुजर रही है जो अनेक प्रकार की सामाजिक चिंताओं को उत्पन्न करता है। सोशल मीडिया के प्रति युवाओं के एक बहुत बड़े हिस्से का आकर्षण इसके आदी होने के स्तर तक जा पहुंचा है। वह सामाजिक जीवन के एक बहुत बड़े भाग को प्रभावित एवं निर्धारित करने लगा है। देर रात तक चैटिंग करना या ऑनलाइन गेम खेलना, सेल्फी लेने का शौक, वॉट्सएप का अनवरत प्रयोग करना और अध्ययन सामग्री के लिए विभिन्न साइटों की खोज में संलग्न रहना, वे पक्ष हैं जो यह दर्शाते हैं कि सोशल मीडिया ने सामाजिक जीवन को व्याधिकीय स्तर तक प्रभावित किया है। इसीलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने ऑनलाइन गेम खेलने की लत को मानसिक रोग की श्रेणी में शामिल किया है। सोशल मीडिया और गैजेटों की लत के कारण युवाओं में शारीरिक और मानसिक व्याधियां तेजी से बढ़ रही हैं। इससे निराशा व कुंठा पनप रही हैं और एक नए प्रकार की सांस्कृतिक विसंगति को जन्म दे रही हैं। यह संस्कृति न केवल सामाजिक संबंधों में उनकी सहभागिता को कम करती है अपितु उन्हें भय एवं आक्रामकता का शिकार बनाती है। कहीं न कहीं आत्महत्या की प्रवृत्ति के उत्पन्न होने में इस सांस्कृतिक विसंगति की भी भूमिका है।

पहनावे की पहचान

अमित चमड़िया

दुनिया मेरे आगे

कुछ समय पहले देश की एक राजनीतिक पार्टी में शामिल हुई बॉलीवुड की मशहूर अभिनेत्री जब मुंबई में चुनाव के दौरान उम्मीदवार के रूप में प्रचार कर रही थीं, तो उसका एक टीवी चैनल पर सीधा प्रसारण हो रहा था। इससे संबंधित खबर प्रसारित करने वाले बहुत जोर देकर कह रहे थे कि अभिनेत्री आज भारतीय परिधान में आम लोगों को 'गुड़ीपड़वा' की बधाई दे रही हैं। गौरतलब है कि 'गुड़ीपड़वा' आमतौर पर महाराष्ट्र में मनाया जाने वाला एक त्योहार है। प्रसंगवश यह बताना जरूरी है कि अभिनेत्री ने उस समय साड़ी पहन रखी थी। हाथों में हरे रंग की चूड़ी और बालों में सफेद फूलों का गुच्छा लटक रहा था। आम रुचि के मुताबिक देखें और साधारण लोगों के बीच बोलचाल की भाषा में भी इसी तरह के पहनावे को हम शुद्ध भारतीय परिधान के रूप में स्वीकार करते हैं। जब कभी किसी माध्यम में इस तरह के पहनावे वाले दृश्य नजर आते हैं तो हम तुरंत कह देते हैं कि यह तो शुद्ध भारतीय है। बॉलीवुड की फिल्मों में ऐसे पहनावे वाले दृश्य खूब नजर आते हैं।

सवाल है कि भारतीय परिधान का मतलब क्या होता है? अभिनेत्री या किसी भी महिला के इस पहनावे को ही क्यों हम भारतीय परिधान मानते हैं? भारतीय होने का क्या मतलब है? कैसे आम बोलचाल की भाषा में इस तरह की पोशाक को ही भारतीय माना गया? आमतौर पर उत्तर भारत के शाकाहारी खाने को ही हम क्यों शुद्ध भारतीय खाना मान लेते हैं?

इस तरह के सवाल जरूरी हैं, क्योंकि हम बहुलतावादी संस्कृति वाले देश में रहते हैं जो इसकी विशेषता और खूबसूरती है! इस विविधता वाले देश में किसी खास संस्कृति यानी उसके पहनावे, खानपान और बोली, जीवन पद्धति आदि को ही केवल भारतीय मानना क्या इस देश के दूसरी अन्य संस्कृति को मानने वाले लोगों के साथ भेदभाव नहीं है? और क्या इस तरह का भेदभाव उनमें अकेले या अलग होने की भावना नहीं पैदा करता है? खासकर तब जब देश की एक बड़ी आबादी की संस्कृति हाशिये पर हो। हमारा संविधान भी इस बात की इजाजत नहीं देता है कि केवल किसी खास पहनावे और खानपान को भारतीय माना जाए। क्या एक खास तरह की संस्कृति को ही भारतीय मानना भारतीय होने को संकीर्ण नजरिये से देखना नहीं है? हम देश के आदिवासी समुदाय के परिधानों या उत्तर-पूर्व के राज्यों मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड आदि के परिधान को भी मुख्य भारतीय परिधान के रूप में मानने से क्यों हिचकते हैं? क्या दक्षिण भारत का पहनावा भारतीय परिधान नहीं है? जिस परिधान को कुछ लोग पाश्चात्य देशों के पहनावे के तौर पर देखते हैं, अगर उसे कोई भारतीय पहनता है और वह आम है तो क्या वह भारतीय परिधान नहीं होगा? यह सुनने को कभी नहीं मिला होगा कि आदिवासी समुदाय के परिधानों या पूर्वोत्तर के राज्यों के परिधानों को देख कर लोग बोलें कि यह भारतीय परिधान है!

इसके अलावा, दूसरी बात और ज्यादा गंभीर है कि कैसे एक खास संस्कृति को ही समाज में भारतीय संस्कृति होने की स्वीकृति मिली होगी? क्या इसमें संचार माध्यमों की भूमिका शामिल नहीं है? आखिर कैसे सूचना का प्रसार करने वाले लोग इस तरह की गंभीर गलतियां कर बैठते हैं और उन्हें शायद इस चूक का आभास भी नहीं होता होगा! लोग इसे बहुत स्वाभाविक मान लेते हैं। दरअसल, जब कोई पत्रकार किसी मीडिया संस्थान में काम करता है तो उसके साथ उसकी अपनी संस्कृति भी होती है। वह उस संस्कृति के साथ ही सूचनाओं का प्रसारण करता है। और चूंकि समाज से लेकर संचार माध्यमों में

हार की सीख

देश की सबसे पुरानी पार्टी लगातार दो लोकसभा चुनावों में मुख्य विपक्षी दल बनने लायक सीटें भी नहीं जीत सकी है। ऐसे में पार्टी की रीति-नीति पर सवाल तो उठेंगे ही। कांग्रेस वह संगठन है जिसके खाते में देश की आजादी में अग्रणी होने की भूमिका दर्ज रही है। चुनाव दर चुनाव पार्टी ने इसे भुनाया भी है और भुनाते-भुनाते अपने मतदाताओं को बुरी तरह से ऊबा दिया है। भूमंडलीकरण, मंडल और कमंडल के बाद से देश की सियासत जमीन से लेकर शीर्ष तक पूरी तरह बदल चुकी है लेकिन कांग्रेस आज भी अपने पुराने मुद्दों को बेचने में लगी हुई है जबकि देश में उन मतदाताओं की संख्या अब मुट्ठी भर ही रह गई है जिन्होंने आजादी की लड़ाई को देखा होगा और उस दौर के आदर्शों में जीते रहे होंगे।

आज मतदान में हिस्सा लेने वाली बहुसंख्यक आबादी वह है जिसने बाबरी ढांचा टूटने, बाजार के खुलने और अन्य पिछड़ा वर्ग के सियासी उभार के बाद जन्म लिया है या होश संभाला है। इस वर्ग की आकांक्षाएं दूसरी हैं जिन्हें संबोधित करने में कांग्रेस अब विफल साबित हो रही है। कांग्रेस का सबसे बड़ा संकट है 134 सालों का इसका इतिहास, जिसके बोझ से वह निकल नहीं पा रही है बल्कि दब कर खत्म होती जा रही है। अगर 134 साल की विरासत का दावा करना ही है तो वही परंपरा दोबारा शुरू करे जब साल भर पर कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया जाता था और लोकतांत्रिक तरीके से एक साल के लिए ही अध्यक्ष का चुनाव होता था। तब इसके ढेर सारे अनुषांगिक संगठन हुआ करते थे और उनमें काम कर-के आए लोगों को टिकट दिए जाते थे। आज जरूरत है कि नेहरू-गांधी परिवार मोह छोड़े और बिना पद के काम करे। इससे न सिर्फ एकरसता टूटेगी बल्कि एक परिवार से इतर कांग्रेस अधिक बड़ी भी दिखाई देगी। अगर उनमें (गांधी-नेहरू परिवार) क्षमता हुई तब नए दल में भी उनकी मजबूत स्थिति बनी रहेगी अन्यथा अपने आभामंडल के इर्द-गिर्द पार्टी खड़ी करने और दिल्ली के ड्रॉइंग रूम में बैठने वाले बुद्धिजीवियों के सहारे अब सियासी दल नहीं चल सकेंगे।

बुद्धिजीवियों के सहारे चलने वाले साम्यवादी दलों का हश्र हम देख चुके हैं, परिवार प्रधान दलों की हालत भी देख ही रहे हैं। आज भारत की राजनीति का भाजपा युग है जिसमें मोटी-मोटी किताबें पढ़ कर भारत का विचार समझने-समझाने वाले लोग नहीं बल्कि घर-चौपालों तक काम करने वाले समर्पित कार्यकर्ताओं की फौज है। वहां नेताओं का व्याकरण और भाषा कोई नहीं जांचता क्योंकि गलतियां करते इसके नेता इस दल को वोट देने वाली बहुसंख्यक जनता को अपने जैसे लगते हैं जहां पार्टी हित में पीढ़ी परिवर्तन हो गया और इसके समर्थकों को यह बुरा भी नहीं लगता। दूसरी ओर कांग्रेस अब भी धर्मनिरपेक्षता-समाजवाद पर अटकी हुई है। इन सत्तर सालों में कांग्रेस ने भारत को परिभाषित किया तो दूसरी ओर इन्हीं सालों में भारत ने भी खुद को नए ढंग से समझा है, व्यावहार किया है। इन दोनों परिभाषाओं और व्यवहारों में एक बड़ा अंतर है। आज कांग्रेस को सत्तर साल में बने भारत और उसके अनुभवों के आधार पर खुद को नए ढंग से परिभाषित और पेश करने की जरूरत है।

● *अंकित दूबे, आंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली*

इंसानियत के शत्रु

मासूम कन्याओं के साथ ज्यादती और तत्पश्चात उनकी बर्बरता पूर्वक हत्या कर देना पाशविकता की पराकाष्ठा है। समझ नहीं आ रहा है कि जिस देश के लोगों की रग-रग में करुणा, मानवता के संस्कार बहते थे, वे इतने पत्थर दिल कैसे हो गए! कड़े कानून व सजा के बाद भी ऐसे अपराधों का बढ़ना विचारणीय है। अपराधी किसी भी धर्म का हो, अब उसे बख्शा नहीं जाना चाहिए। ऐसे अपराध में दोषियों को फांसी की सजा हुई, लेकिन उनका फंदे तक नहीं पहुंच पाना भी हमारी व्यवस्था की कमजोरी को बताता है। बस, यह स्मरण रहे कि आपाधापी में कोई बेकसूर कानून का शिकार न हो जाए।

● *हेमा हरि उपाध्याय, खाचरोद, उज्जैन*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

प्रदूषण के विरुद्ध

पर्यावरण संरक्षण में आम लोगों की भागीदारी सबसे अहम है। इसके जरिए ही अपेक्षित सुधार हो सकता है। लोगों को जागरूक करने के लिए प्रशासन और संबंधित विभाग को संयुक्त रूप से अभियान चलाना होगा। आम लोगों को स्वयं भी अपने आसपास के पेड़-पौधों की रक्षा करने के साथ-साथ ऐसे संसाधनों का प्रयोग करना चाहिए जिनसे पर्यावरण का कम से कम नुकसान पहुंचे। प्रदूषण रोकने के लिए प्रशासन को सख्ती बरतनी होगी। लोग जगह-जगह गंदगी के ढेर लगा देते हैं जिससे निकलने वाली गैसें पर्यावरण के लिए काफी नुकसानदेह हैं। वाहन मालिक अक्सर प्रदूषण मानकों का पालन नहीं करते। प्रशासनिक अधिकारियों को चाहिए कि वे